

बोली विज्ञान की संभावनाएं

ज्वाला प्रसाद कश्यप

शोधार्थी, हिंदी विभाग

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

Email: Jwalak212gmail.com, Ph. No. :7999612953

सारांश -

बोली-विज्ञान भाषा-विज्ञान की वह महत्वपूर्ण शाखा है जो भाषा के आंचलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूपों का वैज्ञानिक अध्ययन करती है। “भारत जैसे बहुभाषी और बहुबोलीय देश में बोलियाँ केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक पहचान, लोक-सांस्कृति और सांस्कृतिक विरासत की संवाहक भी हैं।”¹ प्रस्तुत शोध-पत्र में बोली-विज्ञान की अवधारणा, उसका ऐतिहासिक विकास, प्रमुख अनुसंधान-विधियाँ, भारत में बोली-विज्ञान की स्थिति, उसके सामाजिक आयाम तथा तकनीकी युग में उसकी संभावनाओं का विवेचन किया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण, शहरीकरण और मानकीकरण के दबाव के कारण अनेक बोलियाँ संकट में हैं, परंतु आधुनिक तकनीक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और डिजिटल माध्यम से बोली-संरक्षण और पुनर्जीवन की नई संभावनाएँ भी विकसित हो रही हैं। इस प्रकार बोली-विज्ञान न केवल भाषिक विविधता के संरक्षण का माध्यम है, बल्कि समाज, सांस्कृति और पहचान के समग्र अध्ययन का भी एक सशक्त अनुशासन है।

बीज शब्द -बोली-विज्ञान, भाषिक विविधता, आंचलिक बोलियाँ, समाज-भाषा-विज्ञान, भाषा-संरक्षण, तकनीकी युग, डिजिटल आर्काइव भूमिका

“भाषा मानव समाज की सबसे मूलभूत और सजीव अभिव्यक्ति है। भाषा के माध्यम से ही मनुष्य अपने विचारों, भावनाओं, अनुभवों तथा सांस्कृतिक मूल्यों का आदान-प्रदान करता है। भाषा पहले बोली होती है और जब उसमें साहित्य एवं भौगोलिक विस्तार होता है तब वह भाषा बनता है। भाषा के विविध रूपों में बोली सबसे स्वाभाविक, सहज और जीवंत रूप मानी जाती है, क्योंकि यह सीधे सामान्य जन-जीवन से जुड़ी होती है।”² बोली किसी विशिष्ट क्षेत्र, समुदाय या सामाजिक वर्ग की भाषिक पहचान को व्यक्त करती है।

भारत जैसे देश में, जहाँ भाषिक विविधता जीवन के हर स्तर पर दिखाई देती है, बोली-विज्ञान का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। “आधुनिक समय में वैश्वीकरण, शहरीकरण और तकनीकी विस्तार के कारण बोलियों का स्वरूप तेजी से बदल रहा है। इस परिवर्तनशील संदर्भ में बोली-विज्ञान न केवल भाषिक अध्ययन का विषय है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक चिंतन का भी एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बना है।”³

बोली किसी भाषा का वह रूप है, जिसका प्रयोग किसी सीमित भौगोलिक क्षेत्र या विशिष्ट सामाजिक समुदाय द्वारा किया जाता है। बोली में उच्चारण, शब्दावली और व्याकरण के स्तर पर स्थानीय विशेषताएँ पाई जाती हैं। भाषा जहाँ अपेक्षाकृत मानकीकृत और औपचारिक होती है, वहीं बोली अधिक भावनात्मक, लचीली और लोकजीवन से गहराई से जुड़ी होती है।

बोली-विज्ञान भाषा-विज्ञान की वह शाखा है, जो बोलियों के भौगोलिक वितरण, ध्वन्यात्मक संरचना, शब्द-संपदा और सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभावों का वैज्ञानिक अध्ययन करती है। यह अध्ययन भाषा को केवल संरचनात्मक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवहार और सांस्कृतिक पहचान के रूप में समझने की दृष्टि प्रदान करता है।

बोली-विज्ञान का ऐतिहासिक विकास-

बोली-विज्ञान की परंपरा अत्यंत प्राचीन है और इसका विकास भाषिक विविधता की मानवीय चेतना के साथ जुड़ा हुआ रहा है। भारतीय भाषिक परंपरा में बोली-विज्ञान के बीज वैदिक और संस्कृत व्याकरणिक चिंतन में ही दृष्टिगोचर होने लगते हैं। पाणिनि द्वारा रचित *अष्टाध्यायी* में जनपदीय प्रयोगों, क्षेत्रीय उच्चारणों तथा शब्द-रूप भिन्नताओं का उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि प्राचीन भारत में भाषा को एकरूप न मानकर बहुरूपात्मक संरचना के रूप में समझा गया था। यह दृष्टि आगे चलकर बोली-विज्ञान के विकास की सैद्धांतिक आधारशिला बनी। मध्यकालीन भारतीय भाषिक परिदृश्य में अपभ्रंश और देशज भाषाओं के उत्कर्ष के साथ बोलियों की भूमिका और अधिक सशक्त होती गई। इस काल में साहित्यिक भाषाएँ प्रत्यक्ष रूप से लोक-बोलियों से ऊर्जा ग्रहण करती रहीं। अवधी, ब्रज, मैथिली, भोजपुरी आदि बोलियाँ न केवल जनसंचार की माध्यम रहीं, बल्कि उन्होंने भक्ति-आंदोलन के साहित्य को जनमानस तक पहुँचाने में निर्णायक योगदान दिया। इस प्रकार बोलियाँ भाषा-विकास की परिधि में न रहकर उसकी केंद्रीय शक्ति के रूप में स्थापित हुईं।

आधुनिक बोली-विज्ञान का व्यवस्थित विकास उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में तुलनात्मक भाषा विज्ञान और भाषाई सर्वेक्षणों के उदय के साथ प्रारंभ होता है। भारत में इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य जॉर्ज ग्रियर्सन के संपादन में प्रकाशित *‘Linguistic Survey of India’* माना जाता है। यह सर्वेक्षण भारतीय भाषाओं और बोलियों का पहला वैज्ञानिक, वर्गीकृत और विस्तृत दस्तावेज है, जिसने बोली-विज्ञान को एक स्वतंत्र अध्ययन-क्षेत्र के रूप में स्थापित किया और आगे चल कर गणेश देवी की भी सर्वे बहुत मदद-कार साबित हुईं।

“बीसवीं शताब्दी में बोली-विज्ञान का दृष्टिकोण और अधिक व्यापक हुआ। समाज-भाषा-विज्ञान के उदय के साथ बोली को केवल भाषिक संरचना तक सीमित न रखकर उसे सामाजिक वर्ग, जाति, लिंग, पेशा, क्षेत्रीय पहचान और सत्ता-संबंधों के संदर्भ में समझने की प्रवृत्ति विकसित हुई। अब बोली को सामाजिक अनुभव, सांस्कृतिक स्मृति और सामाजिक पहचान की अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाने लगा। इस चरण में बोली-विज्ञान, भाषा-विज्ञान के एक तकनीकी उपक्षेत्र से आगे बढ़कर सामाजिक विज्ञानों से अंतर्संबंध स्थापित करने वाला बहुआयामी अनुशासन बन गया।”⁴

इस प्रकार, बोली-विज्ञान का ऐतिहासिक विकास यह स्पष्ट करता है कि बोलियाँ किसी मानक भाषा की अपूर्ण या विकृत इकाइयाँ नहीं हैं, बल्कि वे भाषा की जीवंत, गतिशील और सामाजिक रूप से अर्थपूर्ण अभिव्यक्तियाँ हैं। भाषिक इतिहास के प्रत्येक चरण में बोलियों ने भाषा को नई दिशा, संवेदना और सामाजिक आधार प्रदान किया है।

बोली-विज्ञान की प्रमुख शोध-विधियाँ-

“बोली-विज्ञान में अनुसंधान की विधियाँ बहुआयामी, क्षेत्र-आधारित और अंतःविषयक प्रकृति की होती हैं। चूंकि बोली एक जीवित, सामाजिक और प्रयोगधर्मी भाषिक रूप है, इसलिए इसके अध्ययन में प्रत्यक्ष अनुभव और वैज्ञानिक विश्लेषण—दोनों का

आवश्यक होता है। बोली विज्ञान के अध्ययन में संरचनात्मक और ऐतिहासिक दृष्टि का विशेष महत्त्व है।⁵⁵ “बोली-विज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण और आधारभूत शोध-विधि क्षेत्रीय सर्वेक्षण (Field Survey) मानी जाती है। इस विधि के अंतर्गत शोधकर्ता संबंधित क्षेत्र में जाकर मूल वक्ताओं से प्रत्यक्ष संवाद करता है और स्वाभाविक भाषिक प्रयोगों का अवलोकन करता है। इसमें शब्द-संग्रह, वाक्य-रचना, मुहावरे, लोकोक्तियाँ तथा कथ्य-शैली जैसे तत्वों को रिकॉर्ड किया जाता है। क्षेत्रीय सर्वेक्षण बोली की वास्तविक, अप्रभावित और प्रामाणिक स्थिति को सामने लाने में सहायक होता है।⁵⁶”

इसके साथ-साथ ध्वन्यात्मक एवं ध्वनिवैज्ञानिक विश्लेषण बोली-अध्ययन की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विधि है। इस प्रक्रिया में उच्चारण-भिन्नताओं, स्वर-व्यंजन परिवर्तनों, ध्वनि-लोप, ध्वनि-आगम तथा क्षेत्रीय ध्वनि-रूपों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है। ध्वन्यात्मक विश्लेषण के माध्यम से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि किस प्रकार भौगोलिक दूरी, सामाजिक संपर्क और ऐतिहासिक विकास बोली की ध्वनि-संरचना को प्रभावित करते हैं।

आधुनिक बोली-विज्ञान में सामाजिक-भाषाई अध्ययन (Sociolinguistic Method) को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ है। इस पद्धति के अंतर्गत बोली को केवल भाषिक संरचना न मानकर सामाजिक संदर्भों में विश्लेषित किया जाता है। आयु, लिंग, वर्ग, जाति, शिक्षा, पेशा तथा शहरी-ग्रामीण विभाजन जैसे सामाजिक कारकों का बोली-प्रयोग पर क्या प्रभाव पड़ता है—इसका गहन अध्ययन किया जाता है। इससे बोली और सामाजिक पहचान के बीच के अंतर्संबंध स्पष्ट होते हैं। समकालीन समय में तकनीकी विकास ने बोली-विज्ञान की शोध-विधियों को और अधिक वैज्ञानिक एवं सटीक बना दिया है। डिजिटल ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग के माध्यम से भाषिक डेटा को स्थायी रूप में संरक्षित किया जा रहा है। GIS आधारित बोली-मानचित्रण द्वारा क्षेत्रीय भाषिक भिन्नताओं को भौगोलिक मानचित्रों पर स्पष्ट रूप से अंकित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और भाषा-प्रौद्योगिकी आधारित उपकरणों का उपयोग कर बड़े भाषिक कॉर्पस का विश्लेषण, पैटर्न-पहचान और तुलनात्मक अध्ययन संभव हो सका है।

इस प्रकार, बोली-विज्ञान की शोध-विधियाँ पारंपरिक क्षेत्रीय अध्ययन से लेकर अत्याधुनिक तकनीकी साधनों तक विस्तृत हो चुकी हैं। इन विधियों का समन्वित प्रयोग न केवल बोली-अध्ययन को अधिक विश्वसनीय और वैज्ञानिक बनाता है, बल्कि भाषिक विविधता के संरक्षण और प्रलेखन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारत में बोली-विज्ञान की स्थिति-

भारत विश्व के सर्वाधिक भाषिक विविधता वाले देशों में से एक है। यहाँ हजारों बोलियाँ और उप-बोलियाँ प्रचलित हैं, जो न केवल भाषिक बहुलता का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं, बल्कि देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संरचना को भी प्रतिबिंबित करती हैं। “भारतीय भाषिक परिदृश्य में बोली और भाषा के बीच स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना कठिन है, क्योंकि अधिकांश मानक भाषाएँ स्वयं किसी न किसी बोली से विकसित हुई हैं। इस दृष्टि से भारत में बोली-विज्ञान का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है।

हिंदी क्षेत्र में अवधी, भोजपुरी, ब्रज, बुंदेली, बघेली, हरियाणवी और राजस्थानी जैसी बोलियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये बोलियाँ केवल संवाद की साधन मात्र नहीं हैं, बल्कि लोकजीवन की संवेदनाओं, सामाजिक अनुभवों और सांस्कृतिक स्मृतियों की वाहक भी हैं। लोकगीतों, लोककथाओं, कहावतों, पहलियों और आंचलिक

अभिव्यक्तियों के माध्यम से ये बोलियाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी सांस्कृतिक विरासत को जीवंत बनाए रखती हैं। ग्रामीण जीवन, श्रम-संस्कृति, पर्व-त्योहार और सामाजिक संबंधों की संपूर्ण संरचना इन बोलियों में स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त होती है।⁵⁷”

आधुनिक काल में भारतीय भाषाई अध्ययन में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया जाने लगा है कि बोलियाँ किसी मानक भाषा की अपूर्ण या विकृत इकाइयाँ नहीं हैं, बल्कि वे स्वतंत्र भाषिक प्रणालियाँ हैं, जिनकी अपनी संरचना, शब्दावली और व्याकरणिक विशेषताएँ होती हैं। इस बौद्धिक परिवर्तन के साथ भारत में बोली-विज्ञान एक संगठित अकादमिक अनुशासन के रूप में उभरता है। भाषाई सर्वेक्षणों, विश्वविद्यालयीय शोध-परियोजनाओं और क्षेत्रीय अध्ययन के माध्यम से बोलियों के वैज्ञानिक अध्ययन की परंपरा विकसित हुई है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में आंचलिकता के प्रयोग ने बोलियों को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान की है। “कथा-साहित्य, उपन्यास और कविता में आंचलिक शब्दावली, वाक्य-रचना और स्थानीय लहजे के प्रयोग से न केवल यथार्थ का अधिक सशक्त चित्रण संभव हुआ, बल्कि बोलियों को साहित्यिक अभिव्यक्ति का वैध माध्यम भी प्राप्त हुआ। उपबोलियाँ भाषा की आंतरिक विविधता को स्पष्ट करती हैं।⁵⁸” इसके परिणामस्वरूप बोली-विज्ञान का अध्ययन केवल भाषा-वैज्ञानिक दायरे तक सीमित न रहकर साहित्यिक और सांस्कृतिक विमर्श का भी अनिवार्य अंग बन गया।

समकालीन समय में भूमंडलीकरण, शहरीकरण और मीडिया के प्रभाव से अनेक बोलियाँ संकटग्रस्त स्थिति में पहुँच रही हैं। ऐसे में भारत में बोली-विज्ञान की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। बोली-अध्ययन न केवल भाषिक विविधता के संरक्षण का माध्यम है, बल्कि यह सामाजिक पहचान, सांस्कृतिक आत्मसम्मान और लोकतांत्रिक भाषिक चेतना को भी सुदृढ़ करता है।

इस प्रकार, भारत में बोली-विज्ञान की स्थिति अत्यंत समृद्ध, बहुआयामी और संभावनाशील है। यहाँ बोली-विज्ञान भाषा-विज्ञान, साहित्य, समाजशास्त्र और सांस्कृतिक अध्ययन—सभी के साथ अंतर्संबंध स्थापित करते हुए एक समग्र और जीवंत अनुशासन के रूप में विकसित हो रहा है।

तकनीकी युग में बोली-विज्ञान की संभावनाएँ-

इक्कीसवीं शताब्दी का तकनीकी युग बोली-विज्ञान के लिए नई संभावनाओं, नए उपकरणों और नए दृष्टिकोणों का द्वार खोलता है। परंपरागत रूप से बोली-अध्ययन जहाँ क्षेत्रीय सर्वेक्षण और मौखिक साक्ष्यों तक सीमित था, वहीं आज डिजिटल तकनीक ने इसे अधिक व्यापक, सटीक और दीर्घकालिक बना दिया है। तकनीकी साधनों के माध्यम से न केवल बोलियों का वैज्ञानिक अध्ययन संभव हुआ है, बल्कि उनके संरक्षण और पुनर्जीवन की दिशा में भी ठोस प्रयास किए जा सकते हैं।

“डिजिटल आर्काइविंग बोली-विज्ञान के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी उपलब्धि के रूप में उभरी है। ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग के माध्यम से बोलियों के उच्चारण, कथ्य-शैली, लोकगीत, लोककथाएँ और मौखिक परंपराएँ स्थायी रूप में सुरक्षित की जा रही हैं। इससे भविष्य की पीढ़ियों के लिए विलुप्तप्राय बोलियों का प्रामाणिक भाषिक-सांस्कृतिक दस्तावेज उपलब्ध हो सकेगा। इसी क्रम में मोबाइल ऐप्स और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म स्थानीय समुदायों को स्वयं अपनी बोली दर्ज करने और साझा करने का अवसर प्रदान कर रहे हैं, जिससे बोली-अध्ययन में सहभागिता-आधारित मॉडल विकसित हो रहा है।⁵⁹”

कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित स्पीच रिकग्निशन और मशीन ट्रांसलेशन

तकनीकों ने बोली-विज्ञान की संभावनाओं को और अधिक विस्तृत किया है। इन तकनीकों के माध्यम से बोलियों के बड़े भाषिक कॉर्पस का विश्लेषण, पैटर्न-पहचान और तुलनात्मक अध्ययन संभव हो सका है। इससे न केवल बोली और मानक भाषा के बीच के संबंधों को समझने में सहायता मिलती है, बल्कि शिक्षा, प्रशासन और डिजिटल संचार में बोलियों के उपयोग की संभावनाएँ भी खुलती हैं।

सोशल मीडिया, यूट्यूब, पॉडकास्ट और अन्य डिजिटल मंचों ने बोलियों को अभिव्यक्ति का नया और व्यापक क्षेत्र प्रदान किया है। आज बोलियाँ केवल ग्रामीण या स्थानीय संवाद तक सीमित न रहकर डिजिटल सार्वजनिक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। यह स्थिति बोली को हाशिए की भाषा से मुख्यधारा की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की ओर ले जाने का संकेत देती है। युवा पीढ़ी द्वारा डिजिटल माध्यमों पर बोली के प्रयोग से उसकी जीवंतता और प्रासंगिकता बनी रहती है।

हालाँकि, तकनीकी विकास के समानांतर वैश्वीकरण और शहरीकरण के प्रभाव से अनेक बोलियाँ संकटग्रस्त होती जा रही हैं। मानकीकृत भाषाओं का दबाव, शिक्षा और रोजगार में सीमित भाषिक विकल्प तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की धारणा—ये सभी कारक बोलियों के क्षरण में योगदान दे रहे हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि तकनीकी साधनों के साथ-साथ नीतिगत, शैक्षणिक और सामाजिक प्रयास भी किए जाएँ। “विद्यालयी शिक्षा में मातृबोली का समावेश, स्थानीय भाषाई कार्यक्रम, समुदाय-आधारित संरक्षण योजनाएँ और सरकारी भाषा-नीतियाँ—इन सभी के समन्वय से ही बोलियों को दीर्घकालिक संरक्षण प्राप्त हो सकता है। बोलियाँ नियम बद्ध और व्यवस्थित भाषिक प्रणाली हैं।”¹⁰

इस प्रकार, तकनीकी युग में बोली-विज्ञान की संभावनाएँ अत्यंत व्यापक और आशाजनक हैं। यदि तकनीक का उपयोग संवेदनशीलता, सहभागिता और सांस्कृतिक चेतना के साथ किया जाए, तो बोलियाँ न केवल संरक्षित रह सकती हैं, बल्कि आधुनिक समाज में नई प्रासंगिकता और पहचान भी प्राप्त कर सकती हैं।

निष्कर्ष-

बोली-विज्ञान भाषा के अध्ययन से आगे बढ़कर समाज, संस्कृति और पहचान के समग्र विश्लेषण का क्षेत्र है। बोलियाँ किसी समुदाय के ऐतिहासिक अनुभव, सांस्कृतिक स्मृति और सामाजिक संरचना की जीवंत अभिव्यक्ति होती हैं। इनके अध्ययन से न केवल भाषिक विविधता की समझ विकसित होती है, बल्कि सामाजिक संबंधों और सांस्कृतिक मूल्यों का भी उद्घाटन होता है।

तकनीकी युग में बोली-विज्ञान के समक्ष संरक्षण, प्रलेखन और पुनर्जीवन की व्यापक संभावनाएँ उपलब्ध हैं। डिजिटल आर्काइविंग, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित उपकरण और ऑनलाइन मंचों ने बोलियों को नया जीवन और व्यापक मंच प्रदान किया है। किंतु वैश्वीकरण, शहरीकरण और मानकीकृत भाषाओं के दबाव के कारण अनेक बोलियाँ संकटग्रस्त स्थिति में पहुँच गई हैं, जो गंभीर चिंता का विषय है। अतः आवश्यक है कि वैज्ञानिक दृष्टि, तकनीकी संसाधनों और सामाजिक जागरूकता का समन्वित उपयोग किया जाए। शैक्षणिक, नीतिगत और सामुदायिक स्तर पर किए गए प्रयास ही बोलियों के प्रभावी संरक्षण और संवर्धन को संभव बना सकते हैं। इस प्रकार, बोली-विज्ञान भारतीय भाषिक विरासत को संरक्षित रखने के साथ-साथ सामाजिक समानता, सांस्कृतिक आत्मसम्मान और भाषिक लोकतंत्र को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

संदर्भ -

1. जॉर्ज ए. ग्रियर्सन, *लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया*. (खंड I, भाग 1). कलकत्ता: भारत सरकार, 1903-1928. पृ. 3
2. रामचन्द्र वर्मा, *हिंदी की बोलियाँ*. प्रयागराज: साहित्य भवन, 1995. पृ. 18
3. भोलानाथ तिवारी, *भाषा विज्ञान*. दिल्ली: किताब महल, 2008. पृ. 21
4. उदय नारायण सिंह, *समाज-भाषा-विज्ञान : सिद्धांत और अनुप्रयोग*. पटना: बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2010. पृ. 44
5. भोलानाथ त्रिपाठी, *भाषा-विज्ञान की रूपरेखा*. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा, 2004. पृ. 63
6. Chambers, J. K. & Trudgill, Peter. *Dialectology*. Cambridge: Cambridge University Press, 1998. p.15
7. गणेश देवी. *भाषा और समाज*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2010. पृ. 91
8. श्याम सुंदर दास. *हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास*. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा, 1962. पृ. 57
9. रामसुंदर द्विवेदी, *हिंदी की उपबोलियाँ*. लखनऊ: ज्ञानमंडल, 1985. पृ. 29
10. Trudgill, Peter. *Dialects*. London: Routledge, 2000. p.2